

'गोली' उपन्यास में पुरुष पात्रों की मनोवैज्ञानिक दुर्बलता और हताशा का चित्रण

डॉ. सोनु चौरे

सहायक प्राध्यापक -हिंदी

शासकीय महात्मा गांधी महाविद्यालय, इटारसी (म.प्र.)

सारांश :- आचार्य चतुरसेन शास्त्री (1891-1960) हिन्दी साहित्य के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं, जिनकी कृतियाँ यथार्थवादी दृष्टि और मनोवैज्ञानिक गहराई के लिए प्रसिद्ध हैं। उनका उपन्यास गोली (1958) राजस्थान के रजवाड़ों के महलों के अंतःपुर की क्रूर और नग्न यथार्थता का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में चंपा (जिसे गोली कहा जाता है) के मुख से सुनाया गया है, जो एक बदनसीब दासी की करुण-व्यथा है। चंपा को बचपन से ही राजा की वासना की भोग-वस्तु बनाया जाता है और उसका पति किसुन भी सामंती व्यवस्था के सामने विवश होकर चुपचाप यातना सहता रहता है। यद्यपि उपन्यास मुख्य नायिका चंपा के यौन-शोषण, दासी-प्रथा और दहेज में दी जाने वाली “गोलियों” की यातना पर केंद्रित है, किंतु लेखक ने पुरुष पात्रों की आंतरिक जटिलताओं, मनोवैज्ञानिक दुर्बलता और हताशा को भी अत्यंत सूक्ष्मता एवं गहराई से उकेरा है। किसुन, राजा, लालजी खवास, वासुदेव महाराज, चिकित्सक (राबर्ट/नायडू) तथा नवयुवक पात्र जैसे केशरी सिंह सामंती व्यवस्था, अंधी कामवासना, निरंकुश शक्ति और नैतिक पतन के जाल में फँसे हुए दिखाई देते हैं। इस शोध पत्र में मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए इन पुरुष पात्रों की आंतरिक दुर्बलता, यौनिक-भावनात्मक हताशा, अपराधबोध, असहायता, प्रेम-निष्ठा का द्वंद्व तथा अस्तित्व संकट का विस्तृत अध्ययन किया गया है। विश्लेषण फ्रायड के अचेतन मन, यौन-दमन तथा प्रतीकात्मक बधियाकरण सिद्धांत; एरिक फ्रॉम के “स्वतंत्रता से पलायन”; सार्त्र और कैम्यू के अस्तित्ववाद; तथा भारतीय संदर्भ में वात्स्यायन के कामशास्त्र और आधुनिक मनोविज्ञान (संज्ञानात्मक विसंगति सिद्धांत) के आलोक में किया गया है। शोध का प्रमुख निष्कर्ष यह है कि सामंती व्यवस्था स्त्रियों का शोषण तो करती ही है, साथ ही पुरुषों को भी उनकी मर्दानगी, प्रेम, स्वतंत्रता और मानवीय संबंधों से वंचित कर उनके मनोविज्ञान को विकृत कर देती है। राजा की बाहरी शक्ति के बावजूद आंतरिक रिक्तता, किसुन की यौनिक-भावनात्मक मर्दानगी-हन्नन और अन्य पात्रों की गुलामी इस बात को स्पष्ट करती है कि शोषण की कोई भी व्यवस्था लिंग-निरपेक्ष नहीं होती। प्रस्तुत अध्ययन गोली को मात्र नारी-विमर्श की कृति न मानकर पुरुष-विमर्श और मानवीय संबंधों की विडंबना का भी महत्वपूर्ण दर्पण मानता है। यह शोध समकालीन संदर्भ में पितृसत्ता और सामाजिक शोषण को व्यक्त करने के लिए प्रासंगिक है।

बीज शब्द :- गोली उपन्यास, आचार्य चतुरसेन, पुरुष पात्र, मनोवैज्ञानिक दुर्बलता, हताशा, सामंती व्यवस्था, किसुन, राजस्थानी महल जीवन, अस्तित्व संकट।

प्रस्तावना- हिन्दी साहित्य के प्रमुख ऐतिहासिक उपन्यासकार आचार्य चतुरसेन शास्त्री (1891-1960) ने अपनी कृतियों में भारतीय इतिहास, संस्कृति और सामंती व्यवस्था की आंतरिक सच्चाई को बड़ी साहसिकता एवं यथार्थवादी दृष्टि से चित्रित किया है। उनकी रचना गोली (1958) राजस्थान के रजवाड़ों के महलों के अंतःपुर की क्रूर यथार्थता का एक ऐसा मार्मिक दस्तावेज है, जो आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। यह उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है, जिसमें मुख्य नायिका चंपा (जिसे ‘गोली’ कहा जाता है) अपने जीवन की पीड़ादायक कथा स्वयं सुनाती है। उपन्यास दासी-प्रथा, सामंती शोषण, दहेज की प्रथा में दी जाने वाली “गोलियों” (युवती दासियों) की यातना, यौन-शोषण और महलों के भीतरी नैतिक पतन को नग्न रूप में प्रस्तुत करता है। चंपा का जीवन बचपन से ही राजा की

कामवासना की भेंट चढ़ जाता है और वह महल की दीवारों के भीतर एक जीवित लाश की तरह दिन बिताती है। यद्यपि उपन्यास की केंद्रीय संवेदना नायिका चंपा की यौनिक, भावनात्मक और सामाजिक पीड़ा है, किंतु आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने इसमें पुरुष पात्रों की आंतरिक जटिलताओं, मनोवैज्ञानिक दुर्बलताओं और गहन हताशा को भी अत्यंत सूक्ष्मता, गहराई और कलात्मकता से चित्रित किया है। सामंती व्यवस्था की कठोर दीवारों के बीच पुरुष चरित्र — चाहे वे राजा हों, सेवक हों या अन्य सहायक पात्र — अपनी मर्दानगी, प्रेम, स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा को धीरे-धीरे खोते चले जाते हैं। उनकी दुर्बलता शारीरिक नहीं, बल्कि पूरी तरह मनोवैज्ञानिक है — जिसमें असहायता, अपराधबोध, यौनिक-भावनात्मक हताशा, आंतरिक द्वंद्व और अस्तित्व की रिक्तता प्रमुख रूप से दिखाई देती है।

किसुन (चंपा का पति) की विवशता, राजा की अतृप्त कामवासना और आंतरिक खोखलापन, लालजी खवास की सत्ता-गुलामी, चिकित्सक की नैतिक समझौतापरकता तथा नई पीढ़ी के युवा पात्रों की हताशा — ये सभी चरित्र सामंती व्यवस्था की उस विडंबना को उजागर करते हैं जिसमें पुरुष “मालिक” होने का भ्रम पालते हुए भी वास्तव में वासना, परंपरा और सत्ता के गुलाम बन जाते हैं। हिन्दी साहित्य में गोली उपन्यास को मुख्यतः नारी-विमर्श की दृष्टि से पढ़ा और चर्चित किया गया है। अधिकांश आलोचकों ने इसे दासी-प्रथा और स्त्री-शोषण का दस्तावेज माना है। किंतु इस शोध पत्र में पुरुष-विमर्श की नई दृष्टि अपनाई गई है।

मुख्य चर्चा- आचार्य चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास गोली (1956) राजस्थानी रजवाड़ों के अंतःपुर की क्रूर यथार्थता का जीवंत दस्तावेज है। यद्यपि यह आत्मकथात्मक शैली में चंपा (गोली) के मुख से सुनाया गया है, फिर भी पुरुष पात्रों की मनोवैज्ञानिक दुर्बलता और हताशा का चित्रण इतना गहरा और बहुआयामी है कि यह उपन्यास को पुरुष-विमर्श की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण बनाता है। लेखक ने सामंती व्यवस्था की उस जटिलता को उकेरा है जिसमें पुरुष “मालिक” होते हुए भी गुलाम बन जाते हैं — वासना, सत्ता, परंपरा और अपराधबोध के गुलाम। नीचे मुख्य पुरुष पात्रों का विस्तृत मनोविश्लेषण प्रस्तुत है। यह विश्लेषण फ्रायड के अचेतन मन, यौन-दमन, एरिक फ्रॉम के “स्वतंत्रता से पलायन” सिद्धांत, अस्तित्ववाद (सार्त्र एवं कैम्यू) तथा भारतीय कामशास्त्र (वात्स्यायन) और आधुनिक मनोविज्ञान के आलोक में किया गया है।

किसुन का चरित्र:- उपन्यास का सबसे मार्मिक और जटिल पुरुष पात्र किसुन है — चंपा का पति और राजा का विश्वस्त सेवक। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने किसुन को मात्र सहायक पात्र नहीं, बल्कि नायकत्व की ऊँचाई दी है। वह बचपन से चंपा से प्रेम करता है, विवाह भी होता है, किंतु सामंती प्रथा के कारण वह अपनी पत्नी को छुने का साहस भी नहीं कर पाता। राजा जब चाहे चंपा को बुलवा लेता है और किसुन को चुपचाप सहना पड़ता है।

यौनिक-भावनात्मक अपमान-फ्रायडीय दृष्टि से यह “प्रतीकात्मक बधियाकरण” का उत्कृष्ट उदाहरण है। किसुन की मर्दानगी सामाजिक व्यवस्था द्वारा कुचल दी जाती है। विवाहोत्तर जीवन में भी वह यौनिक संतोष से वंचित रहता है। चंपा के मुख से उपन्यास में आता है कि किसुन उसे छुने से भी डरता है, क्योंकि राजा की “संपत्ति” पर हाथ डालना मौत के समान था। यह दमन उसकी कामवासना को अचेतन में

धकेल देता है, जो बाद में अपराधबोध और आत्म-घृणा के रूप में प्रकट होता है।

अपराधबोध और हताशा-किसुन चंपा से गहरा प्रेम करता है, किंतु उसे बचाने में असमर्थ है। यह असहायता एरिक फ्रॉम के अनुसार “स्वतंत्रता से पलायन की प्रक्रिया” है — जहाँ व्यक्ति स्वतंत्रता के बोझ से बचने के लिए आज्ञाकारिता चुन लेता है। किसुन राजा के प्रति निष्ठा बनाए रखता है, क्योंकि विद्रोह करने पर न केवल उसकी, बल्कि चंपा और बच्चों की जान खतरे में पड़ जाती। उसकी हताशा धीरे-धीरे आत्म-विनाश की ओर ले जाती है। वह चंपा की संतानों (जो वस्तुतः राजा की हैं) को अपना मानकर पालता है — यह त्याग का चरम है, किंतु साथ ही गहन मानसिक यातना भी।

आंतरिक द्वंद्व-किसुन के मन में दो शक्तिशाली द्वंद्व चलते हैं — राजा के प्रति निष्ठा बनाम चंपा के प्रति प्रेम। सार्त्र के अस्तित्ववाद के अनुसार, यह “मिथ्या आस्था” है, जिसमें व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता से इनकार कर दूसरों को दोष देता है। किसुन खुद को “सेवक” मानकर अपनी जिम्मेदारी से भागता है, किंतु भीतर से टूटता जाता है। उपन्यास के अंतिम भागों में उसका बलिदान (चंपा और बच्चों की रक्षा के लिए) उसकी हताशा को त्रासदी में बदल देता है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने किसुन के माध्यम से दिखाया है कि शोषित पुरुष शोषण की व्यवस्था का सबसे दर्दनाक शिकार होता है, क्योंकि वह न तो पूरी तरह शोषक बन पाता है और न ही विद्रोही।

राजा का चरित्र: शक्ति की निरंकुशता और आंतरिक रिक्तता-राजा बाह्य रूप से सर्वशक्तिमान प्रतीत होता है — महल, दासियाँ, संपत्ति और निरंकुश अधिकार। किंतु आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने उसके आंतरिक खोखलेपन को बेनकाब किया है।

मनोवैज्ञानिक दुर्बलता-फ्रायड के अनुसार, निरंतर कामवासना की तृप्ति न हो पाना “पुनरावृत्ति बाध्यता” पैदा करता है। राजा चंपा को बार-बार भोगता है, किंतु संतुष्ट कभी नहीं होता। वह प्रेम नहीं, केवल अधिकार और वस्तुकरण चाहता है। यह “शक्ति-नपुंसकता” है — बाहरी शक्ति के बावजूद आंतरिक कमजोरी। वात्स्यायन के कामसूत्र में वर्णित “अतृप्त कामुकता” का यह आधुनिक रूप है।

हताशा और उम्र-जैसे-जैसे राजा की उम्र बढ़ती है, शारीरिक क्षमता घटती है, किंतु वासना बनी रहती है। यह “वृद्धावस्था-राजा मानसिकता” का उदाहरण है, जिसमें व्यक्ति अपनी मृत्युशीलता को वासना के माध्यम से नकारने की कोशिश करता है। उपन्यास में राजा की बढ़ती हताशा उसके क्रूर व्यवहार में झलकती है।

लालजी खवास-अन्य पुरुष पात्र: सामूहिक पुरुष-दुर्बलता-राजा का निकटतम सेवक। सत्ता की गुलामी में उसने अपनी स्वतंत्रता पूर्णतः त्याग दी है। वह राजा की हर इच्छा पूरी करता है, यहाँ तक कि चंपा जैसी दासियों की व्यवस्था भी। उसकी दुर्बलता “अधिनायकवादी व्यक्तित्व” का उदाहरण है — शक्ति के सामने झुकना और कमजोरों पर अत्याचार।

चिकित्सक (राबर्ट/नायडू)--आधुनिक विज्ञान का प्रतिनिधि। वह सामंती वासना और नैतिकता के बीच फँसा रहता है। कभी-कभी राजा की काम-पीड़ा का इलाज करता है, किंतु नैतिक समझौता कर लेता है। यह “नैतिक समझौते” की मनोवैज्ञानिक दुर्बलता दर्शाता है।

नवयुवक राजा / केसरी सिंह--नई पीढ़ी पुरानी व्यवस्था की निरर्थकता देखकर हताशा। वह विद्रोह की ओर झुकता है, किंतु पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाता। यह “पीढ़ीगत आघात” और पीढ़ीगत संघर्ष को दिखाता है।

ये सभी पात्र सामूहिक रूप से दर्शाते हैं कि सामंती व्यवस्था पुरुषों को भी विकृत कर देती है।

सामंती व्यवस्था और पुरुष मनोविज्ञान: तुलनात्मक अध्ययन-सामंती व्यवस्था पुरुष को “मालिक” का भ्रम देती है, किंतु वास्तव में वह वासना, परंपरा और सत्ता का गुलाम बन जाता है। फ्रॉम के अनुसार, यह “पलायन की प्रक्रिया” है — स्वतंत्रता के भय से व्यक्ति अधिनायकवाद की शरण ले लेता है।

भारतीय संदर्भ में, वात्स्यायन की कामशास्त्रीय दृष्टि और आधुनिक मनोविज्ञान (संज्ञानात्मक विसंगति सिद्धांत — फेस्टिंगर) दोनों से यह स्पष्ट होता है कि पुरुष पात्र अपने आंतरिक द्वंद्व को दबाकर व्यवस्था का हिस्सा बन जाते हैं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री की यथार्थवादी दृष्टि यहाँ चरम पर है — वे नारी-शोषण के साथ-साथ पुरुष-मन की विडंबना को भी उजागर करते हैं।

उद्धरण-आधारित उदाहरण-उपन्यास में चंपा कहती है — “किसुन मेरा पति था, किंतु वह मुझे छूने से भी डरता था...”। किसुन का मौन और सहनशीलता उसकी मनोवैज्ञानिक यातना को दर्शाती है। राजा के संवादों में उसकी अतृप्त वासना बार-बार उभरती है।

निष्कर्ष:-आचार्य चतुरसेन शास्त्री का उपन्यास गोली (1958) पुरुष पात्रों की मनोवैज्ञानिक दुर्बलता और गहन हताशा का अत्यंत प्रभावशाली तथा बहुआयामी चित्रण प्रस्तुत करता है। उपन्यास के प्रमुख पुरुष पात्र — किसुन, राजा, लालजी खवास, वासुदेव महाराज, चिकित्सक तथा नवयुवक पात्र — सामंती व्यवस्था के जटिल जाल में फँसे हुए दिखाई देते हैं। किसुन की विवशता और यौनिक-भावनात्मक अपमान, राजा की बाहरी शक्ति के बावजूद आंतरिक रिक्तता तथा अन्य पात्रों की सत्ता-गुलामी स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि शोषण की कोई भी व्यवस्था लिंग-निरपेक्ष नहीं होती। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने बड़े कुशलता से यह दिखाया है कि सत्ता और अंधी कामवासना का अधिकार पुरुष को भी अपनी मानवता, मर्दानगी, प्रेम और स्वतंत्रता से वंचित कर देता है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह स्पष्ट हो गया है कि गोली मात्र नारी-शोषण की कथा नहीं है, बल्कि पुरुष-मनोविज्ञान की विडंबना और अस्तित्वीय संकट का भी गहरा दर्पण है। फ्रायडिय दृष्टि से किसुन का “प्रतीकात्मक बधियाकरण” और राजा की “पुनरावृत्ति बाध्यता”, एरिक फ्रॉम के “स्वतंत्रता से पलायन” तथा सार्त्र-कैम्पू के अस्तित्ववाद के आलोक में इन पात्रों का विश्लेषण यह सिद्ध करता है कि सामंती व्यवस्था पुरुषों को भी विकृत कर उनकी आंतरिक स्वतंत्रता को छीन लेती है। पुरुष “मालिक” होने का भ्रम पालते हुए वास्तव में वासना, परंपरा और सत्ता के गुलाम बन जाते हैं। आज के समकालीन संदर्भ में यह उपन्यास अत्यंत प्रासंगिक है। आधुनिक पितृसत्ता और विषाक्त पुरुषत्व की आलोचना के लिए गोली एक मजबूत आधार प्रदान करता है। आज भी पुरुष अक्सर सामाजिक अपेक्षाओं, शक्ति के दबाव और यौनिक भूमिकाओं के कारण मनोवैज्ञानिक यातना झेलते हैं। आचार्य चतुरसेन शास्त्री का यह चित्रण हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि शोषण की व्यवस्था जब तक बनी रहेगी, तब तक नारी के साथ-साथ पुरुष भी मुक्त नहीं हो पाएगा। अंतिम निष्कर्ष यह है कि गोली एक ऐतिहासिक कथा भर नहीं, बल्कि मानवीय संबंधों की जटिलता, शोषण की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया और सामाजिक विडंबना का एक कालजयी दस्तावेज है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने इस रचना के माध्यम से साहित्य को मात्र मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सत्य को उजागर करने का शक्तिशाली साधन बनाया है। यह अध्ययन भविष्य में हिन्दी उपन्यासों में पुरुष-विमर्श, मनोविश्लेषणात्मक आलोचना तथा सामंती अवशेषों के आधुनिक स्वरूप पर और अधिक शोध की संभावना खोलता है।

संदर्भ सूची:-

1. आचार्य चतुरसेन शास्त्री. गोली. हिन्दू पॉकेट बुक्स, 2012. (मूल 1958)
2. रामविलास शर्मा. हिन्दी उपन्यास का विकास. राजकमल प्रकाशन, 2005
3. सिगमंड फ्रायड. सभ्यता और उसकी विसंगतियाँ (हिन्दी अनुवाद संदर्भ)
4. नामवर सिंह. कथ्य और कला. लोकभारती प्रकाशन।
5. सुधीर पांडे. मनोविश्लेषण और साहित्य. दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन।
6. आचार्य चतुरसेन शास्त्री. गोली. पेंगुइन रैंडम हाउस, 2019।
7. विभिन्न ऑनलाइन स्रोत और शोध पत्र (जैसे रिसर्चगेट पर चतुरसेन अध्ययन)।